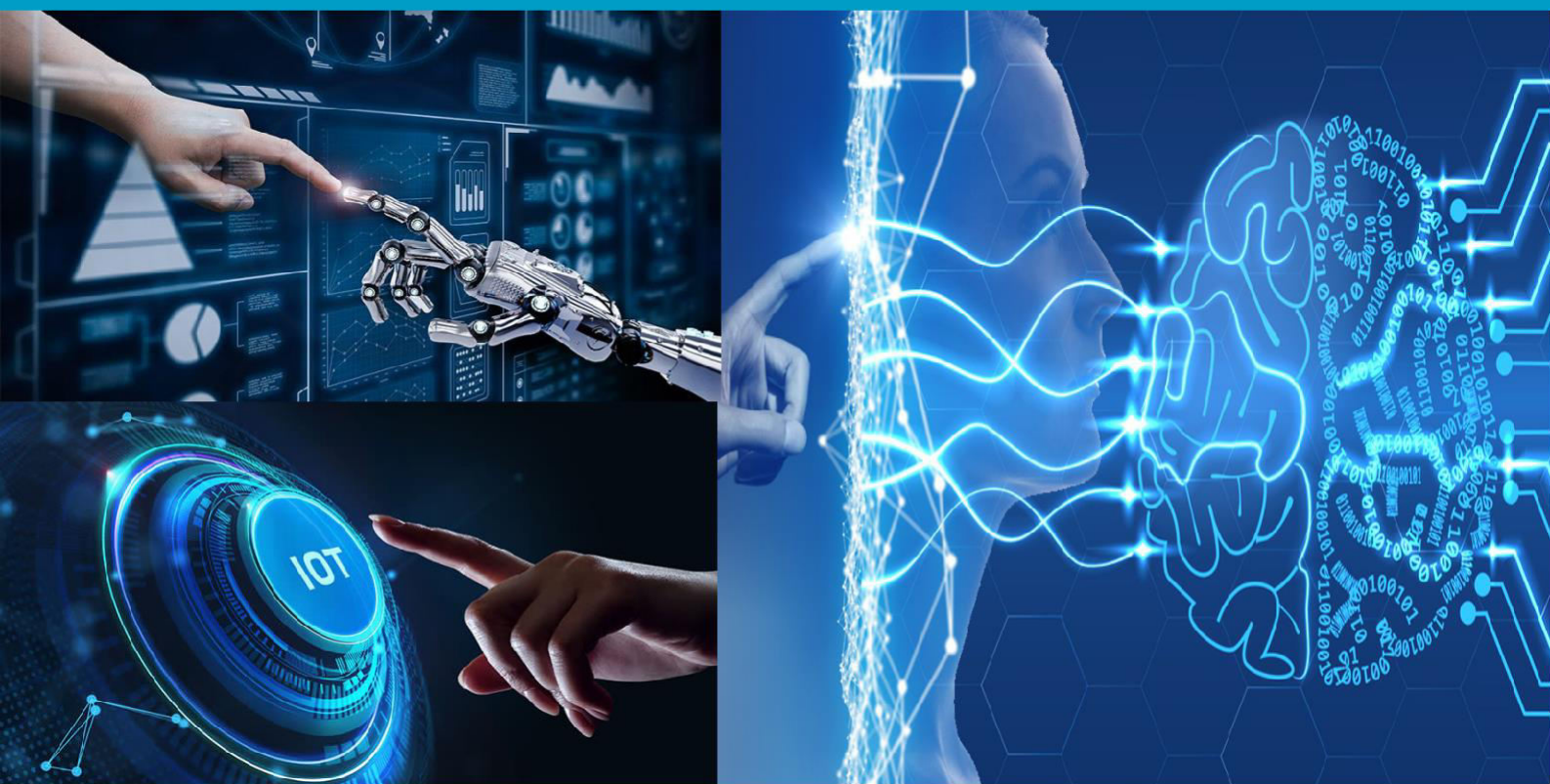




INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH

IN SCIENCE, ENGINEERING, TECHNOLOGY AND MANAGEMENT

Volume 9, Issue 10, October 2022



INTERNATIONAL
STANDARD
SERIAL
NUMBER
INDIA

Impact Factor: 7.580



+91 99405 72462



+9163819 07438



ijmrsetm@gmail.com



www.ijmrsetm.com

मध्य, उत्तरी और उत्तर-पश्चिमी भारत के विशाल हिस्सों को पंजाब और अरब सागर तक शामिल किया, कुषाणों की पिछली कलात्मक परंपरा को जारी रखा और उसका विस्तार किया तथा एक अनूठी गुप्त शैली विकसित की।^[1,2,3]

बैक्ट्रिया और सोग्डियाना के क्षेत्रों में कुषाणों की उपस्थिति के कुछ निशान बचे हुए हैं। तख्त-ए-संगिन, सुर्ख कोटल (एक स्मारक मंदिर) और खलचयान के महल में पुरातात्विक संरचनाएं ज्ञात हैं। घुड़सवारी करने वाले तीरंदाजों और महत्वपूर्ण रूप से, कृत्रिम रूप से विकृत खोपड़ी वाले पुरुषों का प्रतिनिधित्व करने वाली विभिन्न मूर्तियां और फ़िज़ ज्ञात हैं, जैसे कि खलचयान के कुषाण राजकुमार (खानाबदोश मध्य एशिया में अच्छी तरह से प्रमाणित एक प्रथा)।^[8]
खलचयान (प्रथम शताब्दी ई.पू.)

खलचयान में कुषाण कला
(पहली शताब्दी ईसा पूर्व)



युएझी राजकुमार का मुखिया (खलचयान महल, उज़्बेकिस्तान)।^{[9][10]}



एक शक योद्धा का सिर, युएझी, खलचयान के पराजित दुश्मन के रूप में।^{[11][12][13]}

दूसरी-पहली शताब्दी ईसा पूर्व के अंत में खलचयान की कला संभवतः कुषाण कला की पहली ज्ञात अभिव्यक्तियों में से एक है।^[१४] यह अंततः हेलेनिस्टिक कला से और संभवतः ऐ-खानौम और न्यासा शहरों की कला से ली गई है।^[१४] खलचयान में, गोल टेराकोटा मूर्तियों की पंक्तियों में कुषाण राजकुमारों को सम्मानजनक रवैयें में दिखाया गया था, जबकि कुछ मूर्तिकला दृश्यों में कुषाणों को शकों के खिलाफ लड़ते हुए दर्शाया गया है।^[१५] यूज़िस को एक राजसी आचरण के साथ दिखाया गया है, जबकि शकों को आम तौर पर साइड-विस्कर के साथ दर्शाया जाता है, जो अभिव्यंजक और कभी-कभी विचित्र विशेषताओं को प्रदर्शित करते हैं।^[१५]

बेंजामिन रोलैंड के अनुसार, कलचयान में दिखाई देने वाली शैलियाँ और जातीय प्रकार पहले से ही गंधार की बाद की कला की विशेषताओं का अनुमान लगाते हैं और शायद इसके विकास के मूल में भी रहे हों।^[१४] रोलैंड विशेष रूप से खलचयान में दर्शाए गए जातीय प्रकारों की समानता पर, गंधार की कला में और स्वयं चित्रांकन की शैली की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं।^[१४] उदाहरण के लिए, रोलैंड को खलचयान के एक यूझी राजकुमार के प्रसिद्ध सिर और गंधार बोधिसत्व के सिर के बीच काफी निकटता मिलती है, और वह फिलाडेल्फिया कला संग्रहालय में एक बोधिसत्व के गंधार सिर का उदाहरण देते हैं।^[१४] कुषाण शासक हेरियोस के चित्र के साथ गंधार बोधिसत्व की समानता भी आश्चर्यजनक है।^[१४] रोलैंड के अनुसार, खलचयान की बैक्ट्रियन कला कुषाणों के संरक्षण की बदौलत गंधार की कला में अपने प्रभाव के कारण कई शताब्दियों तक जीवित रही।^[१४]

बैक्ट्रिया और भारत (पहली-दूसरी शताब्दी ई.)

कुषाण शाही चित्रकला के पक्षधर थे, जैसा कि उनके सिक्कों और राजवंशीय मूर्तियों में देखा जा सकता है।^[१६] उत्तर भारत के मथुरा में राजा कनिष्क प्रथम की एक स्मारकीय मूर्ति मिली है, जिसकी विशेषता इसकी अग्रभाग और मार्शल रुख है, क्योंकि वह अपनी तलवार और गदा को मजबूती से पकड़े हुए है।^[१६] उनका भारी कोट और सवारी के जूते आम तौर पर खानाबदोश मध्य एशियाई हैं और भारत की गर्म जलवायु के लिए बहुत भारी हैं।^[१६] उनके कोट को सैकड़ों मोतियों से सजाया गया है, जो संभवतः उनके धन का प्रतीक हैं।^[१६] उनकी भव्य राजसी उपाधि ब्राह्मी लिपि में अंकित है: "महान राजा, राजाओं का राजा, ईश्वर का पुत्र, कनिष्क"।^{[१][१६]}

जैसे-जैसे कुषाण धीरे-धीरे भारतीय समाज में समाहित होते गए, उनकी पोशाक हल्की होती गई और उनके चित्रण अधिक प्राकृतिक होते गए, जो सामने से दर्शाए जाने से दूर होते गए। हालाँकि, उन्होंने अभी भी अपनी खानाबदोश पोशाक के विशिष्ट तत्वों को बरकरार रखा है, जिसमें पतलून, जूते, भारी अंगरखे और मजबूत बेल्ट शामिल हैं। ^[उद्धरण की आवश्यकता]

•



प्रारंभिक कुषाण शासक हेरायोस (1-30 ई.) का विवरण, उसके सिक्कों से मिलता है।

•



देवता ज़ीउस / सेरापिस / ओहर्मज़द के साथ कुषाण उपासक, बैक्ट्रिया, तीसरी शताब्दी ई. ^[17]

•



विमा कडफिसेस अपनी मुद्रा पर पूर्ण पोशाक में, ग्रीक भाषा में, पहली शताब्दी ई.

•



विमा कडफिसेस की स्मारक प्रतिमा, पहली शताब्दी ई.

•



कुषाण राजा या राजकुमार, हुविष्क (150-180 ई.) कहा जाता है, गांधार कला। ^[18]

•



कुषाण शासक (संभवतः हुविष्क, बैठे हुए) और परिचारकों की पेंटिंग, बैक्ट्रिया, 74-258 ई. ^[19]
कुषाणों के अधीन गांधार की कला
मुख्य लेख: ग्रीको-बौद्ध कला



कनिष्क प्रथम के शासनकाल के दौरान, 143 ई.पू. की लोरियन तांगई बुद्ध की प्रतिमाएँ। विशेषताएँ पहले से ही काफी देर से हैं, और अधिक शास्त्रीय प्रकारों की तुलना में गिरावट दिखाती हैं : कपड़े पहले से ही त्रि-आयामी नहीं हैं, और सिर बड़ा और चौड़ा जबड़ा है।^[20]

कुषाण कला ने गांधार की ग्रीको-बौद्ध कला की परंपराओं को मिश्रित किया, जो हेलेनिस्टिक कलात्मक सिद्धांतों और मथुरा की अधिक भारतीय कला से प्रभावित थी।^[2] माना जाता है कि गांधार की अधिकांश ग्रीको-बौद्ध कला कुषाणों द्वारा निर्मित की गई थी, जिसकी शुरुआत पहली शताब्दी ईस्वी के अंत से हुई थी।^[16]

कुषाण अपने धर्मों में उदार थे, ईरानी, ग्रीक या भारतीय परंपराओं के दसियों देवताओं की पूजा करते थे जैसा कि उनके सिक्कों पर देखा जा सकता है।^[86] ऐसा माना जाता है कि इस सहिष्णु धार्मिक माहौल ने दृश्य कलाओं के प्रति खुलेपन के साथ जैन, बौद्ध और ब्राह्मण परंपराओं में नवीन आकृति कला के निर्माण को प्रोत्साहित किया।^[86] बुद्ध को केवल सांची या भरहुत जैसी प्रारंभिक भारतीय कला में प्रतीकों के साथ दर्शाया गया था। बुद्ध के पहले ज्ञात प्रतिनिधित्व कुषाणों के आगमन से पहले दिखाई देते हैं, जैसा कि बिमरन ताबूत के साथ दिखाया गया है, लेकिन बौद्ध कला निस्संदेह उनके शासन में फली-फूली, और बुद्ध की अधिकांश ज्ञात प्रारंभिक मूर्तियाँ कुषाणों के काल की हैं।^[86]

बुद्ध को चित्रित करने में प्रारंभिक कुषाण कला की विशेषताओं का पता कई मूर्तियों के अध्ययन के माध्यम से लगाया जा सकता है, जिन पर दिनांकित शिलालेख हैं। 143 ई.पू. के शिलालेखों के साथ खड़े बुद्ध की कुछ मूर्तियाँ, जैसे कि लोरियन तांगई बुद्ध, दिखाती हैं कि उस समय की विशेषताएँ पहले से ही अधिक शास्त्रीय प्रकारों की तुलना में बाद की और कुछ हद तक पतित हैं: बुद्ध की आकृति तुलनात्मक रूप से अधिक मोटी, छोटी और चौड़ी है, कपड़े पहले से ही त्रि-आयामी नहीं हैं, और सिर बड़ा और चौड़ा जबड़ा है।^[21] गांधार और मथुरा की बौद्ध मूर्तियों पर अनेक कुषाण भक्तों को उनकी विशिष्ट मध्य एशियाई वेशभूषा के साथ देखा जा सकता है:



बोधिसत्व का सिर, कहा जाता है कि यह खालचयान में देखी गई कुषाण राजसी शैलियों का पुनरुत्पादन है। फिलाडेल्फिया संग्रहालय कला^[14]

मैत्रेय, अपने पैरों पर कुषाण भक्त दम्पति के साथ। दूसरी शताब्दी. मर्दन, गांधार।



मैत्रेय, कुषाण भक्तों के साथ. बायीं और दायीं ओर। दूसरी शताब्दी गांधार।



" कनिष्क मंजूषा ", जिसमें ब्रह्मा और इंद्र से घिरे बुद्ध और निचले भाग पर कनिष्क हैं , 127 ई.



सहर-ए-बहलोल से एक बैठा हुआ बुद्ध त्रिमूर्ति , ब्रुसेल्स बुद्ध के समान , संभवतः 132 ई.पू. का है।^[22] पेशावर संग्रहालय ।^[23] ^[24]
कुषाणों के अधीन मथुरा की कला
मुख्य लेख: मथुरा कला



" बाल बोधिसत्व " की मूर्ति, जिसके हाथ में शाफ्ट और छत्र है , जिसे " कनिष्क के तीसरे वर्ष " (लगभग 130 ई.) में "भाई (भिक्षु) बाला" द्वारा समर्पित किया गया था। दाहिना हाथ अभिवादन मुद्रा में उठा हुआ होगा। सारनाथ संग्रहालय ।

विम कदफिसेस या कनिष्क प्रथम के समय से कुषाणों ने उत्तर भारत में मथुरा में अपनी एक राजधानी स्थापित की। उस समय तक मथुरा में पहले से ही एक महत्वपूर्ण कलात्मक परंपरा थी, लेकिन कुषाणों ने इसके उत्पादन को बहुत विकसित किया, खासकर बौद्ध कला के माध्यम से।^[16] बुद्ध की कुछ मूर्तियाँ, जैसे कि " ईसापुर बुद्ध " लगभग 15 ई.पू. से मथुरा से जानी जाती हैं, कुषाणों के आगमन से बहुत पहले, उस समय जब उत्तरी क्षत्रप सोडासा अभी भी मथुरा में शासन कर रहे थे, लेकिन इन शुरुआती चित्रणों की शैली और प्रतीकवाद अभी भी अनिश्चित थे।^[25] कुषाणों ने इन शुरुआती बुद्ध मूर्तियों के प्रतीकवाद को मानकीकृत किया, उनके गुणों और सौंदर्य गुणों को एक शानदार तरीके से और अभूतपूर्व रूप से बड़े पैमाने पर विकसित किया।^{[25] [26]}

बोधिसत्व[4,5,6]

मथुरा में बोधिसत्वों की मूर्तियों की शैली कुछ हद तक पहले की स्मारकीय यक्ष मूर्तियों की याद दिलाती है, जो आमतौर पर एक या दो शताब्दी पहले की हैं। गांधार की ग्रीको-बौद्ध कला , हालांकि कुषाणों के अधीन एक ही क्षेत्र से संबंधित है, इन रचनाओं पर केवल सीमित प्रभाव पड़ा है।^[29] कुछ लेखक मानते हैं कि हेलेनिस्टिक प्रभाव आकृतियों की जीवंतता और यथार्थवादी विवरणों (मौर्य कला की कठोरता की तुलना में एक विकास), १५० ईसा पूर्व से परिप्रेक्ष्य के उपयोग, हेराक्लीज़ की गाँठ और क्लब जैसे प्रतीकात्मक विवरणों, पोशाकों की लहरदार तहों या मद्यपान के दृश्यों के चित्रण में दिखाई देता है।^{[18] [29]} मथुरा की कला शेष भारत पर बेहद प्रभावशाली हो गई, और "दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से सबसे प्रमुख कलात्मक उत्पादन केंद्र" थी।^[26]



किम्बेल बैठे बोधिसत्व , एक शिलालेख के साथ " कनिष्क के 4 वें वर्ष में "।^{[30] [31] [32]}

बैठे हुए बोधिसत्व, कनिष्क (159 ई.) का "वर्ष 32" अंकित, मथुरा।^{[33] [34]}

•



बैठे हुए बोधिसत्व, अलिखित.^[35]

•



एक बोधिसत्व, दूसरी शताब्दी, मथुरा

•



बुद्ध के आसन पर बोधिसत्व के चारों ओर कुषाण भक्त। वशिष्ठ का शासनकाल, मथुरा, लगभग 250 ई. खड़े बुद्ध

मथुरा में खड़ी बुद्ध प्रतिमा, लगभग दूसरी शताब्दी ई., मथुरा संग्रहालय

मथुरा में खड़ी बुद्ध की मूर्तियाँ बाल बोधिसत्व के प्रकार के बोधिसत्वों की तुलना में थोड़ी बाद की प्रतीत होती हैं। हालाँकि कई मूर्तियाँ दूसरी शताब्दी ई.पू. की हैं, लेकिन वे अक्सर ऐसी विशेषताएँ प्रदर्शित करती हैं जो गुप्त कला की पहचान बन जाएँगी, विशेष रूप से बुद्ध के शरीर से चिपकी हुई बहुत पतली पोशाक। हालाँकि खड़ी बुद्ध की ये मूर्तियाँ गांधार की ग्रीको-बौद्ध कला में आसानी से देखी जाने वाली विशेषताएँ और दृष्टिकोण प्रदर्शित करती हैं : बुद्ध का सिर एक प्रभामंडल से घिरा हुआ है, वस्त्र दोनों कंधों को ढँकते हैं, बायाँ हाथ बुद्ध की पोशाक पकड़े हुए है जबकि दूसरा हाथ अभिया मुद्रा बनाता है, और वस्त्र में सिलवटें गांधार शैलियों की अधिक विशिष्ट हैं।^[36]

कई मायनों में, मथुरा के खड़े बुद्ध यक्षों द्वारा शुरू की गई स्थानीय मूर्तिकला परंपरा और गांधार की ग्रीको-बौद्ध कला से बुद्ध के हेलेनिस्टिक डिजाइनों का संयोजन प्रतीत होते हैं।^[36]

अन्य मूर्तिकला कृतियाँ

मथुरा की मूर्तियों में कई हेलेनिस्टिक तत्व शामिल हैं, जैसे कि सामान्य आदर्शवादी यथार्थवाद, और प्रमुख डिज़ाइन तत्व जैसे कि घुंघराले बाल, और मुड़े हुए कपड़े। विशिष्ट मथुरान अनुकूलन गर्म जलवायु परिस्थितियों को दर्शाते हैं, क्योंकि वे कपड़ों की अधिक तरलता में शामिल होते हैं, जो उत्तरोत्तर दोनों के बजाय केवल एक कंधे को ढँकते हैं। चेहरे के प्रकार भी अधिक भारतीयकृत होते जाते हैं। प्राचीन भारत में हेलेनिज़्म में बनर्जी ने "मथुरा स्कूल के मिश्रित चरित्र का वर्णन किया है जिसमें हम एक ओर बरहुत और सांची की पुरानी भारतीय कला की सीधी निरंतरता पाते हैं और दूसरी ओर गांधार से प्राप्त शास्त्रीय प्रभाव"।^[37]

हालाँकि कुछ मामलों में, गांधार की कला का स्पष्ट प्रभाव भी महसूस किया जा सकता है, जैसा कि "मथुरा हेराक्लीज़" के मामले में, हेराक्लीज़ की एक हेलेनिस्टिक मूर्ति जिसमें वह नेमियन शेर का गला घोट रहा है, जिसे मथुरा में खोजा गया था और अब यह कोलकाता भारतीय संग्रहालय में है, साथ ही साथ बैचेलियन दृश्य भी हैं।^{[38][39][40]} हालाँकि गांधार की कला से प्रेरित,

हेराक्लीज़ का चित्रण पूरी तरह से सटीक नहीं है और विषय वस्तु की समझ की कमी दिखा सकता है, क्योंकि हेराक्लीज़ को पहले से ही उस शेर की खाल पहने हुए दिखाया गया है जिससे वह लड़ रहा है।^[41]^[42]

•



मद्यपान का दृश्य। मथुरा
ग्रीक पोशाक में महिलाओं के साथ बैचेलियन.^[43] मथुरा

कोने की रेलिंग के खंभे पर शराब पीने के दृश्य, यक्षियों और संगीतकारों को दर्शाया गया है, जिसमें हेलेनिस्टिक तत्व शामिल हैं।
मथुरा, कुषाण काल लगभग 100 ई.^[44]

•



भूतेश्वर यक्षी, मथुरा लगभग। दूसरी शताब्दी ई.पू.

•



मथुरा की एक नक्काशी जिसमें बुद्ध के जन्म से लेकर मृत्यु तक का पूरा जीवन दर्शाया गया है। वस्त्र गांधार हैं।

•



मथुरा हेराक्लीज़ । मथुरा में नेमियन शेर का गला घोटते हुए हेराक्लीज़ की एक मूर्ति मिली। हाल ही की तस्वीर के लिए देखें [1] 29
जुलाई 2017 को वेबैक मशीन पर संग्रहीत । दूसरी शताब्दी ई. की शुरुआत।^[45]
कुषाणों के अधीन मथुरा में हिंदू कला

चतुर्व्यूह
"चार उत्सर्जन"



सामने



चतुर्व्यूह : वासुदेव और वृष्णि वंश के अन्य सदस्य । [४६] वासुदेव अपनी भारी सुसज्जित गदा के साथ केंद्र में उपयुक्त रूप से खड़े हैं और एक शंख पकड़े हुए हैं, उनके बड़े भाई बलराम एक सर्प के हुड के नीचे उनके दाईं ओर हैं, उनके बेटे प्रद्युम्न उनके बाईं ओर (खो गए हैं), और उनके पोते अनिरुद्ध शीर्ष पर हैं। [४६] [४७] मूर्ति के पीछे शाखाओं के साथ एक पेड़ का तना दिखाई देता है, इस प्रकार देवताओं के बीच वंशावली संबंध पर प्रकाश डाला गया है। [४८] दूसरी शताब्दी ई., मथुरा संग्रहालय।

पहली से दूसरी शताब्दी ई.पू. के बीच हिंदू कला पूरी तरह विकसित होनी शुरू हुई और उस समय से पहले कलात्मक प्रतिनिधित्व के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं। [४९] हिंदू कला के लगभग सभी ज्ञात उदाहरण मथुरा और गांधार के क्षेत्रों में खोजे गए हैं। [५०] हिंदू कला को पहली प्रेरणा मथुरा की बौद्ध कला से मिली। तीन वैदिक देवताओं इंद्र, ब्रह्मा और सूर्य को पहली बार बौद्ध मूर्तिकला में दूसरी-पहली शताब्दी ईसा पूर्व में बुद्ध के जीवन की स्मृति में दृश्यों में परिचारकों के रूप में दर्शाया गया था, तब भी जब बुद्ध को स्वयं मानव रूप में नहीं दिखाया गया था, [7,8,9] लेकिन केवल उनके प्रतीकों के माध्यम से दिखाया गया था, जैसे कि उनके जन्म के दृश्य, त्रयस्त्रिंश स्वर्ग से उनके अवतरण, या इंद्रशाला गुफा में उनके एकांतवास के दृश्य। [४९] कुषाणों के समय में, हिंदू कला में बौद्ध कला के सामान्य संतुलन और सादगी के विपरीत, मूल हिंदू शैलीगत और प्रतीकात्मक तत्वों की प्रचुरता शामिल होती गई [५१] आमतौर पर यह माना जाता है कि कुषाणों के समय में मथुरा में ही ब्राह्मण देवताओं को उनका मानक रूप दिया गया था:

"काफी हद तक यह आस्तिक ब्राह्मणवाद के विभिन्न देवी-देवताओं के दृश्य चित्रण में ही है कि मथुरा के कलाकार ने अपनी प्रतिभा और आविष्कारशीलता को सर्वश्रेष्ठ रूप में प्रदर्शित किया। लगभग सभी प्रमुख पंथ प्रतीकों विष्णु, शिव, सूर्य, शक्ति और गणपति के साथ-साथ, आस्था के कई सहायक देवताओं को संगठित तरीके से पहली बार भारतीय कला में मूर्त रूप दिया गया। इसे देखते हुए और उस समय बनाई गई भक्ति छवियों की विविधता और बहुलता के लिए, ईसाई युग की पहली तीन शताब्दियों के दौरान मथुरा का इतिहास, जो कुषाणों के शासन के साथ मेल खाता है, ब्राह्मण मूर्तिकला के विकास में क्रांतिकारी कहा जा सकता है"

— प्राण गोपाल पॉल और देबजानी पॉल, मथुरा की कुषाण कला में ब्राह्मणवादी छवि: परंपरा और नवाचार [52]
वासुदेव की पंथ छवियां

वासुदेव-कृष्ण तीन विशेषताओं के साथ, एक अभिवादन मुद्रा बनाते हुए, और बिना आभा के, टेराकोटा। [५३]
वासुदेव की पंथ छवियों का निर्माण इस अवधि के दौरान जारी रहा, इस मथुरा देवता की पूजा 4 वीं शताब्दी ईस्वी तक विष्णु की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण थी। [५३] दूसरी और तीसरी शताब्दियों की मूर्तियाँ संभवतः चार भुजाओं वाले वासुदेव को उनके गुणों के साथ खड़े दिखाती हैं: पहिया, गदा और शंख, उनका दाहिना हाथ अभय मुद्रा में नमस्कार कर रहा है। [५४] केवल गुप्त काल के दौरान, स्वयं विष्णु की पूजा पर ध्यान केंद्रित करने वाली मूर्तियाँ दिखाई देने लगीं, वासुदेव की मूर्तियों के समान ही प्रतीकात्मकता का उपयोग करते हुए, लेकिन कंधों से शुरू होने वाले प्रभामंडल के साथ। [५३] इस समय के दौरान, गोपाला-कृष्ण की मूर्तियाँ, समामेलित कृष्ण के अन्य मुख्य घटक, मथुरा से अनुपस्थित हैं

इस अवधि के दौरान कुछ मूर्तियाँ बताती हैं कि "व्यूह सिद्धांत" (व्यूहवाद, "उत्सर्जनों का सिद्धांत") उभरने लगा था, क्योंकि "चतुर्-व्यूह" ("वासुदेव के चार उत्सर्जन") की छवियाँ दिखाई दे रही हैं। [५६] मथुरा संग्रहालय में प्रसिद्ध "चतुर्व्यूह" मूर्ति एक रचना में वासुदेव को केंद्रीय देवता के रूप में दिखाने का एक प्रयास है, साथ ही उनसे निकलने वाले पंचरात्र प्रणाली के वृष्णि वंश के अन्य सदस्यों : संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध, जिसमें सांबा गायब है। [४६] [४७] राहत के पीछे एक कदंब के पेड़ की शाखाओं को उकेरा



गया है, जो प्रतीकात्मक रूप से विभिन्न देवताओं के वंशावली संबंध को दर्शाता है।^[56] वासुदेव और बाद में विष्णु का चित्रण शैलीगत रूप से अलंकृत बोधिसत्वों के प्रकार से लिया गया^[57]

सूर्य देव सूर्य, बौद्ध धर्म में भी पूज्य, कुषाण काल

शिव लिंग की पूजा इंडो-सिथियन,^[58] या कुषाण भक्तों द्वारा की जाती थी, दूसरी शताब्दी ई.

युद्ध देवता कार्तिकेय और अग्नि देवता अग्नि, कुषाण काल, पहली शताब्दी ई.

हिंदू भगवान शिव, तीसरी शताब्दी ई. मथुरा या अहिच्छत्र.^[59]

स्कंद और विशाखा के बीच षष्ठी की कुषाण-युग की छवि, सी। दूसरी शताब्दी ई.पू

हुविष्क के एक सिक्के पर तीन मुख वाले चार भुजाओं वाले ओशो को अक्सर शिव के साथ पहचाना जाता है।^[60]

जैन कला

मथुरा में खोजी गई जैन मूर्तियों के टुकड़ों पर कुषाण राजाओं, जैसे वासुदेव प्रथम, के नाम पर विभिन्न समर्पण तिथियों के साथ दिखाई देते हैं।^[61]^[62]

पार्श्वनाथ, कुषाण काल

बकरी के मुख वाले भगवान हरिनैगमेषा, कुषाण काल, मथुरा

जैन धर्म के जन्म देवता नायगमेश, पहली-तीसरी शताब्दी ई.^[63]

ध्यान में जिन, कुषाण काल, मथुरा

तीर्थकर सिर, कुषाण काल, मथुरा

तीर्थकर सिर, कुषाण काल, मथुरा

कालक्रम

कनिष्क प्रथम का स्वर्ण सिक्का, जिस पर बुद्ध का चित्रण और ग्रीक लिपि में बैक्ट्रियन किंवदंती अंकित है: BOΔΔO "बोड्डो", अर्थात् "बुद्ध", लगभग 127-150 ई.

कुषाण कला का कालक्रम इस क्षेत्र के कला इतिहास के लिए काफी महत्वपूर्ण है। सौभाग्य से, कई मूर्तियाँ दिनांकित हैं और उन पर कुषाण साम्राज्य के विभिन्न शासकों का उल्लेख करने वाले शिलालेख हैं।^[64]

सिक्का शैली के विकास को निर्धारित करने में भी बहुत महत्वपूर्ण है, जैसा कि कनिष्क प्रथम के प्रसिद्ध "बुद्ध" सिक्कों के मामले में है, जो उनके शासनकाल (सी. 127-150 ई.) के हैं और पहले से ही खड़े बुद्ध के एक निपुण रूप को प्रदर्शित करते हैं, जो संभवतः पहले से मौजूद मूर्तियों से प्राप्त हुए हैं।^[64]

जबकि कुषाण मूर्तियों की प्रारंभिक शैलियाँ तुलनात्मक रूप से अपरिष्कृत लगती हैं, बाद की, अत्यधिक अलंकृत मूर्तियाँ आम तौर पर तीसरी-चौथी शताब्दी ई.पू. की मानी जाती हैं।^[64]

ब्रुसेल्स बुद्ध दिनांकित शिलालेख के साथ दुर्लभ गांधार मूर्तियों में से एक है, और इस पर "वर्ष 5" की तारीख अंकित है, जो संभवतः कनिष्क युग का संदर्भ देती है, इसलिए 132 ई.^[65] हालांकि, इसकी परिष्कृत शैली ने कुछ लेखकों को तिथि की गणना के लिए बाद के युग का सुझाव देने के लिए प्रेरित किया है।

कुषाण सिक्के

कुषाणों का सिक्का प्रचुर मात्रा में था और प्रत्येक कुषाण शासक को बढ़ावा देने में प्रचार का एक महत्वपूर्ण उपकरण था।^[66] कुषाण सिक्कों का एक नाम दीनारा था, जो अंततः रोमन नाम डेनारियस ऑरियस से आया था।^[67]^[68]^[69] कुषाणों के सिक्कों की नकल पश्चिम में कुषाणो-सासानियों और पूर्व में बंगाल में समता के राज्य तक की गई थी। गुप्त साम्राज्य का सिक्का भी शुरू में कुषाण

साम्राज्य के सिक्कों से लिया गया था, जिसने उत्तर पश्चिम में समुद्रगुप्त की विजय के बाद उसके वजन मानक, तकनीकों और डिजाइनों को अपनाया।^{[७६] [७७] [७८]} गुप्त सिक्कों पर कल्पना शैली और विषय वस्तु दोनों में पहले के राजवंशों की तुलना में अधिक भारतीय हो गई, जहां ग्रीको-रोमन और फारसी शैलियों का ज्यादातर पालन किया गया था।^{[७९] [७७] [८०]}

पार्थियन सांस्कृतिक क्षेत्र का प्रभाव^[10,11,12]



पार्थियन राजा भगवान हेराक्लीज़ को भेंट चढ़ाते हुए - वेरेथ्राना । मस्जिद-ए सुलेमान , ईरान । दूसरी-तीसरी शताब्दी ई. लुवर संग्रहालय एसबी 7302. ^[81]

जॉन एम. रोसेनफील्ड के अनुसार, कुषाणों की मूर्तियों में पार्थियन सांस्कृतिक क्षेत्र की कला के साथ मजबूत समानताएं हैं।^[82] कपड़ों, सजावटी तत्वों या मुद्रा के संदर्भ में समानताएं कई हैं, जो बड़े पैमाने पर और सामने की ओर होती हैं, जिसमें पैर अक्सर फैले हुए होते हैं।^[82] विशेष रूप से, हथरा की मूर्ति, जो संरक्षण की अपेक्षाकृत अच्छी स्थिति में बनी हुई है, ऐसी समानताएं दर्शाती है।^[82] यह उस समय मेसोपोटामिया और कुषाण साम्राज्य के क्षेत्र के बीच प्रत्यक्ष सांस्कृतिक आदान-प्रदान के कारण हो सकता है, या एक समान पार्थियन कलात्मक पृष्ठभूमि से समान प्रकार के प्रतिनिधित्व की ओर ले जा सकता है।

II. विचार-विमर्श

कुषाण साम्राज्य में निर्मित मूर्तियाँ मूर्तिकला का अद्भुत उदहारण है। साम्राज्यवाद का कुषाण युग, इतिहास का एक महानतम आंदोलन रहा है, यह उत्तर पूर्वी भारत तथा पश्चिमी पाकिस्तान, (वर्तमान अफ़ग़ानिस्तान) तक फैला था। ईसवी की पहली शताब्दी से तीसरी शताब्दी के बीच कुषाण एक राजनीतिक सत्ता के रूप में विकसित हुए और उन्होंने इस दौरान अपने राज्य में कला का बहुमुखी विकास किया। भारतीय कला जगत् का परिपक्व युग यहीं से प्रारंभ होता है।

कुषाण कला के मुख्य क्षेत्र

कनिष्क प्रथम, जो कुषाण राज परिवार का तीसरा सदस्य था, ने अपने शासन काल में पूर्ण रूप से आधिपत्य स्थापित किया और उसके शासनकाल में बौद्ध धर्म और कला, सांस्कृति गतिविधियों का बड़े पैमाने पर प्रचार-प्रसार और विकास हुआ। कुषाण शासनकाल में कुषाण कला के दो मुख्य क्षेत्र थे। कलात्मक गतिविधियों का केंद्र उत्तर-पश्चिम की काबुल घाटी के क्षेत्र का गांधार, अंचल और पेशावर के आस-पास का ऊपरी सिंधु क्षेत्र मथुरा में जहाँ हेलनी और ईरानी कला का विकास हुआ और उत्तर भारत में कुषाणों की शीतकालीन राजधानी भी भारतीय शैली की कला का प्रचलन रहा।

ऐतिहासिक तथ्य

कुषाण कला की जो सबसे प्रमुख बात रही, वह यह थी कि उसने सम्राट को एक देवीय शक्ति के रूप में ही प्रतिपादित किया। कई संदर्भों से इस बात को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उनमें एक उदाहरण तो कुषाण शासन काल के सिक्के हैं। इसके अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण आश्रम हैं, जिनसे पता चलता है कि सम्राट को किस तरह देवीय शक्ति के रूप में प्रचलित किया जाता था। पहले बौद्ध कलाकार अपनी कलाकृतियों में बुद्ध के अस्तित्व और उनकी उपस्थिति का ही मुख्य रूप से रेखांकन करते थे, वहीं कुषाण शासनकाल में बुद्ध को एक मानवीय रूप में प्रस्तुत किया गया। हालांकि अभी तक यह स्पष्ट नहीं है कि बुद्ध की पहली मूर्ति कहाँ बनी। अधिकांश भारतीय शिक्षाशास्त्रियों की राय है कि बुद्ध की पहली मूर्ति मूल रूप से मथुरा में ही बनायी गयी न कि गांधार में जैसा कहा जाता है।



कुषाण काल में मथुरा में तीन धार्मिक संप्रदाय प्रमुख थे-जैन, बौद्ध और ब्राह्मण। इनमें ब्राह्मण धर्म को छोड़कर किसी को भी मूलतः मूर्ति पूजा मान्य न था। परन्तु मानव की दुर्बलता एवं अवलम्ब अथवा आश्रय खोजने की स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण शनैः शनैः इन सम्प्रदायों के आचार्य स्वयं ही उपास्य देव बन गये। साथ ही साथ उपासना के प्रतीकों का भी प्रादुर्भाव हुआ। ई. पू. द्वितीय शताब्दी के पहले से ही बुद्ध के प्रतीक जैसे-स्तूप, भिक्षापात्र, उष्णीश, बोधिवृक्ष, आदि लोकप्रिय हो गये थे। जैन संप्रदाय में भी चैत्य स्तम्भ, चैत्य वृक्ष अष्ट माङ्गलिक चिन्ह आदि प्रतीकों को मान्यता मिल रही थी। कुषाण काल तक पहुँचते-पहुँचते इन प्रतीकों के स्थान पर प्रत्यक्ष मूर्ति की संस्थापना की इच्छा बल पकड़ने लगी और अल्प काल में ही माथुरी कला ने तीर्थ करों की मूर्तियाँ और बौद्ध मूर्तियों को जन्म दिया। इसी के साथ-साथ विष्णु, दुर्गा, शिव, सूर्य, कुबेर आदि ब्राह्मण धर्म की उपास्य मूर्तियाँ भी इसी समय बनीं। भारतीय कला को मथुरा कला की यह सबसे अनूठी देन है। गुप्त और गुप्तोत्तर कला के विशाल प्रतिमा-संग्रह का आधार कुषाण कला में है।

तीर्थकर -प्रतिमा का जन्म

जैन धर्म की प्रारम्भिक पूजा पद्धति में निम्नांकित प्रतीकों का स्थान महत्वपूर्ण था-धर्मचक्र, त्रिरत्न, स्तूप, चैत्यस्तम्भ, चैत्य-वृक्ष, पूर्णघट, श्रीवत्स, सराव-समपुट, पुष्प-पडलगा, स्वास्तिक, मत्स्य-युग्म, व भद्रासन। इनके यहाँ अर्चना का एक दूसरा प्रतीक था आयागपट्ट। आयागपट्ट एक चौकोर शिलाप होता था जिस पर या तो एकाधिक प्रतीक बने होते थे या प्रतीकों के साथ तीर्थकर की छोटी सी प्रतिमा भी बनी रहती थी। इनमें से कुछ लेखांकित हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि ये पूजन के उद्देश्य से स्थापित किए जाते थे। मथुरा के इस प्रकार के कुषाण कालीन कई सुन्दर आयागपट्ट मिले हैं, इनमें से एक समूचा आयागपट्ट तथा तीर्थकर प्रतिमा से सुशोभित दूसरा खण्डित आयागपट्ट जो मथुरा संग्रहालय में विद्यमान है, विशेष रूप से उल्लेखनीय है। समूचे वार आयागपट्ट पर, एक जैन स्तूप, उसका तोरण द्वार, सोपान मार्ग, और दो चैत्यस्तम्भ पर एक जैन स्तूप, उसका तोरण द्वार, सोपान मार्ग, और दो चैत्यस्तम्भ बने हैं जिन पर क्रमशः धर्मचक्र और सिंह की आकृतियाँ बनी हैं। सिंह का सम्बन्ध तीर्थकर महावीर से है [13]

तीर्थकर प्रतिमा के सर्वप्रथम दर्शन हमें आयागपट्टों पर ही होते हैं। यह कहना कठिन है कि तीर्थकर की प्रतिमा एवं बुद्ध की मूर्ति इन दोनों में प्रथम कोन बनी होगी। कदाचित् यह दोनों कार्य साथ ही साथ हुए थे।

मथुरा में कंकाली टीले पर जैनों का बहुत विशाल गढ़ था। यहाँ उनके विहार और स्तूप विद्यमान थे। यहीं से तीर्थकरों की प्रारम्भिक प्रतिमाएँ मिली हैं। इन मूर्तियों की मुख्य विशेषताएँ अधोलिखित हैं –

- ये मूर्तियाँ केवल दो ही प्रकार की हैं, एक तो पद्मासन में बैठी हुई ध्यानस्थ मूर्तियाँ और दूसरी जाँघ से हाथों को सटाकर सीधी खड़ी प्रतिमाएँ जिन्हें 'कायोत्सर्ग' मुद्रा में स्थित प्रतिमाएँ कहा जाता है।

- तीर्थकरों के मस्तक या तो मुण्डित हैं या छोटे-छोटे घुँघराले केशों से अलंकृत हैं। आँखों की पुतलियाँ साधारणतः नहीं दिखाई जाती थी पर बाद के कलाकारों ने इस कमी को दूर करने के लिए अपने समय में कुछ कुषाण कालीन मूर्तियों में आँखें बनाई हैं।

- तीर्थकरों के कान कंधों तक लटकने वाले नहीं हैं और मुख पर भी कोई विशेष भाव लक्षित नहीं होता।

- महापुरुष के बोधक चिह्नों में हथेलियों पर धर्मचक्र और पैर के तलुओं पर त्रिरत्न और धर्मचक्र दोनों बने रहते हैं। वक्षस्थल पर बीचों बीच 'श्रीवत्स' चिह्न बना रहता है। कुछ प्रतिमाओं में हाथ की उँगलियों के पोर भी श्रीवत्सादि मंगल चिह्न बने हैं। लगता है कि यहाँ बुद्ध-बोधिसत्व मूर्तियों की नकल की गई है।^१

- उत्तर काल में दिखलाई पड़ने वाले तीर्थकर लांछन या परिचय चिह्नों का यहाँ अभाव है। इस लिए प्रत्येक तीर्थकर की अलग-अलग पहचान करना कठिन है। 'आदिनाथ' या 'ऋषभनाथ' कन्धों पर लहराती हुई बालों की लटाओं के कारण तथा पार्श्वनाथ मस्तक के पीछे दिखलाई पड़ने वाले संपंफणाओं के कारण पहचाने जाते हैं। तीर्थकर नेमिनाथ की कुछ मूर्तियाँ उन पर बनी हुई कृष्ण बलराम की मूर्तियों के कारण पहचानी जा सकती है। शेष मूर्तियों के नाम, यदि वे लेखांकित हैं, तो उनके लेखों से ही जाने जा सकते हैं।

- तीर्थकर प्रतिमाएँ दिगम्बर हैं। किंचित मूर्तियों पर वस्त्रकार छोटा टुकड़ा हाथ में पकड़े जैन साधु भी दिखलाई पड़ते हैं।^२

- आसनस्थ तीर्थकर बहुधा सिंहासनों पर बैठे दिखलाए गए हैं, जो उनके चक्रवर्तित्व का बोधक है।

- कुषाण कालीन तीर्थकर मूर्तियों के पीछे अर्धचन्द्रावली या हस्तिनख से सुशोभित किनारे वाला प्रभामण्डल दिखलाई पड़ता है।^३ समकालीन बुद्ध वा बोधिसत्व प्रतिमाओं में भी इसके दर्शन होते हैं।



कुषाण काल से ही तीर्थंकर प्रतिमा का एक और प्रकार चल पड़ा जो चौमुखी मूर्तियाँ 'सर्वतोभद्र' प्रतिमा के नाम से पहचाना जाता है। इस प्रकार की मूर्तियों में एक ही पाषाण के चारों ओर चार तीर्थंकर प्रतिमाएँ बनी होती हैं। इनमें बहुधा एक 'ऋषभनाथ' व दूसरी 'पार्श्वनाथ' की रहती है। (चित्र ४१) इस प्रकार की चतुर्मुख प्रतिमा बनाने की पद्धति परिवर्तित काल में ब्राह्मण धर्म द्वारा भी अपनायी गयी।

जैन धर्म की देव-देवी प्रतिमाएँ
मथुरा की कुषाण कला में अधोलिखित प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं –

- नेगमेश या हरिनेगमेशी -

बकरे के मुख वाले इस देवता के शिशु जगत से सम्बन्ध है। यह महत्व की बात है कि कुषाण काल के बाद जैन मन्दिरों में इस देवता के स्वतंत्र रूप से स्थापित किये जाने के उदाहरण नहीं मिलते।^४ और न उसकी प्रतिमाओं की बहुलता ही दिखलाई पड़ती है कुषाण कालीन माथुरी प्रतिमाओं में हम उन्हें बहुधा बच्चों से घिरा हुआ पाते हैं।

- रेवती या षष्ठी -

नेगमेश के समान इस देवी का संबंध भी बच्चों से है। इसका भी मुख बकरे का ही है। मथुरा संग्रहालय में कुछ ऐसी स्त्री मूर्तियाँ हैं जिनकी गोद में पालना है। इसमें एक शिशु भी दिखलाई पड़ता है (मथुरा संग्रहालय मूर्ति संख्या ०० ई. ४)५ इन्हें रेवती या षष्ठी की मूर्तियाँ माना गया है।^६

- सरस्वती -

यह जैनों की भी देवी है और ब्राह्मण धर्म की भी देवी है। जैन सरस्वती की प्राचीनतम मूर्ति मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त हुई है जो इस समय लखनऊ के संग्रहालय में प्रदर्शित है। (लखनऊ संग्रहालय मूर्ति संख्या जे. २४)

- कृष्ण बलराम -

तीर्थंकर नेमिनाथ के पार्श्ववर्ती देवताओं के रूप में इनका अंकन किया जाता है। कृष्ण चतुर्भुज है। बलराम हाथ में मदिरा का चषक लिये हुए है। उनके मस्तक पर नागफण है (चित्र ६६)।

बुद्ध प्रतिमा का निर्माण

पश्चिम के विद्वानों ने जब भारतीय कला का अध्ययन किया तब उन्होंने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि सर्वप्रथम बुद्ध की मूर्ति कुषाण सम्राटों के काल में गांधार कला शैली के कलाकारों द्वारा बनाई गई। भारतीय विद्वानों ने इस सिद्धान्त में कई त्रुटियाँ देखी और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बुद्ध की प्रथम प्रतिमा गांधार कला शैली में नहीं अपितु मथुरा में बनी। इनकी इस धारणा का प्रमुख आधार बुद्ध बोधिसत्वों की वे लेखांकित प्रतिमाएँ हैं। जिन पर स्पष्टतः कनिष्क के राज्य संवत्सर का उल्लेख है। गांधार कला में इस प्रकार की सुनिश्चित तिथियों से युक्त लेखांकित प्रतिमाओं का सर्वथा अभाव है। इसके अतिरिक्त देश की तत्कालीन स्थिति व धार्मिक अवस्था भी इसी ओर संकेत करती है कि प्रथम बुद्ध मूर्ति मथुरा में ही बनी होगी न कि गांधार में। संक्षेप में उस समय की स्थिति को यों समझा जा सकता है।

इसवी सन् की प्रथम शताब्दी के पूर्व मथुरा में वैष्णव धर्म व इससे संबंधित भक्ति संप्रदाय जोर पकड़ चुका था। महाक्षत्रप 'शोडस' के समय में ही यहाँ वासुदेव का मन्दिर था और बलराम अनिरुद्धादि पंचवीरों की प्रतिमाओं का पूजा समाज में प्रचलित था। दूसरी ओर जैन आचार्यों की मूर्तियाँ गढ़ी जा रही थीं और वहाँ भी भक्ति संप्रदाय बल पकड़ रहा था। रहा बौद्ध समाज, इनमें पुष्पदीपादि द्वारा बुद्ध के प्रतीकों का पूजन तो प्रचलित था ही, केवल निराकार तथागत की साकार प्रतिमा का अभाव था। इस अभाव को दूर करने में महासंधि के मत के बौद्धों ने बड़ी सहायता की।

बौद्धों के धार्मिक जगत में इस समय मतभेद चल रहा था कुछ लोग प्राचीन सिद्धान्तों वा नियमों को अपरिवर्तित रूप में ही मानना उपयुक्त समझते थे।

पर दूसरा संप्रदाय परिवर्तनवादी था जो महासंधिक नाम से प्रसिद्ध था। आगे चल कर ये दोनों मत 'हीनयान' और 'महायान' के नाम से पहचाने जाने लगे। महासाधिक लोगों ने बुद्ध की निराकार मूर्ति और उसका पूजन उचित माना। उनका कहना था कि निर्वाण प्राप्ति के पूर्व बुद्ध बोधिसत्व के नाम से पहचाने जाते हैं। निर्वाण के उपरान्त पुनः कोई इस लोक में नहीं आता। बुद्ध ने संबोधि व ज्ञान तो प्राप्त कर लिया था पर निर्वाण को पाना इसलिए अस्वीकार किया कि वे लोगों के कल्याण के लिए बार-बार पृथ्वी पर अवतीर्ण हो सके। अतः निर्वाण प्राप्त बुद्ध की तो नहीं, पर संबोधि प्राप्त बोधिसत्व की प्रतिमा बनाना अवैध नहीं क्योंकि वे साकार रूप में मनुष्यों और देवों के द्वारा देखे और पूजे जाते हैं। कदाचित इसी लिए प्रारम्भिक बुद्ध मूर्तियों में अङ्कित लेखों में उन्हें बोधिसत्व ही कहा गया है।



आगे चलकर महाज्ञानियों ने एक बुद्ध प्रतिमा ही नहीं अपितु शताधिक देवी-देवताओं की मूर्तियों के निर्माण और पूजन की पद्धति को अपनाया।[14,15,16]

कुषाण सम्राट कनिष्क का शासन काल भी बुद्ध की प्रतिमा निर्माण के लिए प्रेरक हुआ। इस शासक ने अपनी धार्मिक सहिष्णुता के प्रदर्शन के लिए अपनी राजमुद्राओं पर विविध धर्मों के देवी देवताओं को स्थान दिया। शैवों का शिव, ब्रह्मण धर्म के चन्द्र, सूर्य, वायु आदि अन्य देव तथा ईरानी मत के देव गणों में 'एतशो', 'नाना' आदि को इसके सिक्कों पर अंकित किया जा रहा था। इन्हीं के साथ उसने बुद्ध की मूर्ति से भी अपनी कुछ मुद्राएँ सुशोभित कीं।

गांधार कला के बुद्ध मूर्तियों की तिथि विषय की अनिश्चित की ओर हम पहले ही संकेत कर चुके हैं। मथुरा में कुषाण शासक 'कनिष्क' के राज्यरोहण के दूसरे वर्ष से ही बुद्ध प्रतिमा का निर्माण प्रारम्भ हुआ जो बाद तक चलता रहा।
बुद्ध प्रतिमा के निर्माण के आधार७

बुद्ध की खड़ी मूर्तियों की कल्पना 'यक्ष' प्रतिमाओं के आधार पर की गई। इस यक्ष प्रतिमाओं का उल्लेख पहले किया जा चुका है, जो इस समय के पहले से ही लोक कला में बन रही थीं। बैठी हुई बुद्ध मूर्ति का आधार कदाचित भरहुत काल में दिखलाई पड़ने वाली दीर्घ तापसी की मूर्ति है। कुछ विद्वान इसका आधार उन तीर्थकर प्रतिमाओं को मानते हैं, जिनका अंकन जैन 'आयागपट्टों' पर हुआ है।८

बुद्ध के बालों का अंकन निदान कथा के आधार पर हुआ। प्रारम्भिक अवस्था में बुद्ध का मस्तक मुण्डित होता है और केवल एक ही लट ऊपर दाहिनी ओर घूमती हुई दिखलाई पड़ती है। बाद में तो सारा मस्तक ही छोटे-छोटे घुँघराले बालों से आवृत होने लगता है। उनके मस्तक के पीछे दिखलाई पड़ने वाले प्रभामण्डल का उद्भव कदाचित उन ईरानी देवी-देवताओं की मूर्तियों से हुआ जिन्हें वहाँ 'चजत' के नाम से जाना जाता है। कुषाण मुद्राओं पर अंकित इन देवी-देवताओं की मूर्तियों में प्रभामण्डल विद्यमान है।

चीवर संघाटी आदि बुद्ध के वस्त्रों की कल्पना तो प्रत्यक्ष जगत से ही ली गई होगी। वैसे 'विनयपिटक' में भी इसका विस्तृत विवरण मिलता है।९ बुद्ध के पैरों के नीचे दिखलाई पड़ने वाला कमल कदाचित सांची की कलाकृतियों की देन है।
प्रारम्भिक बुद्ध प्रतिमाओं की विशेषताएँ१०

इस प्रकार धर्माचार्य, शासक, कलाकार व तत्कालीन जनता के सहयोग से जो प्रारम्भिक बुद्ध मूर्तियाँ कुषाण काल में निर्मित हुई उनमें निम्नांकित विशेषताएँ देखी जा सकती हैं -

- मुण्डित मस्तक, ऊपर कर्पद तथा घुमावदार एक लट से शोभित उष्णीष।
- ऊर्ण या दोनों भोहों के मध्य बना हुआ एक छोटा सार्वतुलाकार चिह्न। महापुरुषों के बत्तीस लक्षणों में इनकी गणना है।११

ललितविस्तार के वर्णनानुसार मार पराजय के समय बोधिसत्व की 'ऊर्णा' से एक ज्योति उद्भूत हुई, जिसने मार के प्रसादों को कंपित कर दिया।१२ कुषाण कालीन बुद्ध मूर्तियों में ऊर्णा चिह्न अनिवार्य रूप से विद्यमान रहता है। एक मूर्ति में (मथुरा संग्रहालय मूर्ति संख्या ००.ओ-२७) ऊर्णा के स्थान पर अर्थात् भूमध्य में गड्ढा बना है जिसमें कदाचित प्रकाश का प्रतीक कोई रत्न जड़ा गया हो।

- विशाल एवं चौड़ी छाती तथा एक, बहुधा बाँया कंधा वस्त्र से ढका हुआ।१३

- दाहिना हाथ अभयमुद्रा में ऊपर उठा हुआ, बाँया हाथ आसनस्थ मूर्तियों में जाँघ पर तथा खड़ी प्रतिमाओं में वस्त्र के छोर को पकड़ मुट्ठी बाँये हुए।

- शरीर में चिपका हुआ तथा बाँये कंधे व निचले भाग पर सिकुड़नों से शोभित वस्त्र।

- कमर में गाँठ पड़ी हुई पट्टी या कायबन्धन।

- पूरी खुली हुई आँखें तथा स्मितयुक्त मुख।

- आध्यात्मिक भाव एवं देवतत्व के प्रगति करण की अपेक्षा शारीरिक भावभंगिमा के चित्रण का आधिक्य।



- दोनों पैरों का समान रूप से सीधे तने रहना, कभी-कभी उनके बीचों-बीच कमल कलियों का गुच्छ १४, कंचित सी मूर्तियाँ १५, सिंह १६, अथवा मैत्रेय बोधिसत्व १७ का बना रहना।

- हस्तिनखों से युक्त प्रभामण्डल।

गांधार कला के सम्पर्क में आने के बाद कतिपय मूर्तियों के गठन में कुछ परिवर्तन हुए जिनका विवेचन पहले हो चुका है।

उत्तर कुषाण काल में आसनस्थ मूर्ति के गढ़ने में शैली अधिक सुथरी हुई है। चीवर तथागत के दोनों कंधों पर पड़ा रहता है। साथ ही दोनों पैर भी वस्त्र में छिपे रहते हैं और वस्त्र का सामने वाला छोर चौकी पर लटकता दिखलाई पड़ता है। जैन तीर्थंकरों के समान बुद्ध की चरण चौकी के सामने वाले भाग पर दाताओं की मूर्तियों का अंकन अब प्रारम्भ हो जाता है। शनैः शनैः मुण्डित मस्तक लुप्त होकर घूँघरों का निर्माण साधारण परिपाटी बन जाती है। इस कला की बुद्ध व बोधिसत्व प्रतिमाओं के हाथ केवल चार मुद्राओं में अभय भूमिस्पर्श ध्यान तथा धर्म-चक्र-प्रवर्तन में दिखलाई पड़ते हैं। पाँचवी मुद्रा 'वरद' का यहाँ सर्वथा अभाव है।^{१८} ब्राह्मण धर्म की देव प्रतिमाओं का निर्माण^[17,18]

कुषाण कला के पुजारियों ने जैन तथा बौद्ध धर्मों के समान ही ब्राह्मण धर्म की भी सेवा की। वैष्णव, शाक्त व शैव संप्रदाय ब्राह्मण धर्म के प्रमुख अंग हैं। शैवों को उसी के अन्तर्गत माना जाता है। गुप्त काल तक पहुँचते-पहुँचते इसमें गणेश उपासकों का भी इसमें गणपत्य के नाम से इसमें समावेश हुआ। इस प्रकार विष्णु, दुर्गा, शिव, सूर्य व गणपति की उपासना पंच देवोपासना के नाम से प्रसिद्ध हुई। ललितविस्तार एवं अन्य ग्रन्थों में जो कुषाण काल में, विद्यमान थे, ब्राह्मण, धर्म के तत्कालीन देवी-देवताओं की मूर्तियों की एक तालिका मिलती है जिसमें शिव, स्कन्द, सूर्य, चन्द्र, ब्रह्म, नारायण, वैश्रवण, कुबेर, शुक्र व लोकपालों की प्रतिमाएँ प्रमुखता से गिनाई गई हैं।^{१९} इनमें लगभग सभी की मूर्तियाँ कुषाण काल में उपलब्ध हैं। कुषाण काल में गणपति की उपासना मूर्ति रूप में कदाचित अधिक प्रचलित नहीं थी, पर इसके स्थान पर कार्तिकेय व कुबेर खूब पूजे जाते थे। ब्रह्मा की केवल इनी गिनी मूर्तियाँ मिली हैं इन सभी देव मूर्तियों की अपनी विशेषताएँ हैं। इनमें से अधिकतर प्रतिमाएँ दोनों ओर (INROUND) उकेरी गई हैं। पीछे की ओर या तो प्रतिमा का पृष्ठ भाग अंकित है अथवा वृक्ष बना हुआ है जिस पर गिलहरी, तोता आदि बैठे हुए दिखलाए गए हैं।

विष्णु मूर्ति -

वैष्णव संप्रदाय की पंचवीर प्रतिमाओं का उल्लेख पहले ही हो चुका है। दुर्भाग्य से उक्त प्रतिमाएँ खण्डित अवस्था में पायी गयी है। अतः उनके विषय में अधिक नहीं कहा जा सकता है। पर इस काल की बनी चतुर्भुज विष्णु की अखण्डित प्रतिमाएँ भी प्राप्त हुई हैं जो अपनी निम्नांकित विशेषताओं के कारण महत्वपूर्ण है -

- हाथों की डौल की दृष्टि से ये समकालीन यक्ष और बोधिसत्व प्रतिमाओं से मिलती-जुलती है। इनके हाथ चार हैं, पर तीन में गदा, चक्र व छोटा सा जलपात्र या शंख है और चौथा अभय मुद्रा में कंधे तक उठा हुआ है।

- गदा का आकार मुगद्र जैसा है तथा उसे पकड़ने की पद्धति भी अविकसित शैली की ओर संकेत करती है।

- बुद्ध और बोधिसत्वों की समकालीन प्रतिमाओं में दिखलाई पड़ने वाला उर्णा चिह्न यहाँ भी विद्यमान है।

- विष्णु के अवतारों से सम्बन्धित मूर्तियाँ इस काल में बहुत कम बनीं। अभी तक के संग्रह में केवल दो मूर्तियाँ हैं जिनका विवेचन आगे यथा स्थान किया जायेगा।

- गरुड़रुड़ विष्णु की प्रतिमा का निर्माण भी इस काल से प्रारम्भ हो गया था।^{२०} (चित्र ६३)

- अष्टभुज विष्णु की मूर्तियाँ भी शनैः शनैः प्रचार में आ रही थीं।^{२१}

शिव मूर्ति -

पूजन हेतु शिव की पुरुष आकार प्रतिमा तथा लिंग दोनों प्रचलित थे। शिवलिंग का पूजन विदेशी लोग भी करते थे और आज के समान कभी-कभी पीपल के पेड़ों के नीचे इन लिंगों की स्थापना की जाती थी इस काल की कलाकृतियों में ये दृश्य विद्यमान हैं।^{२२} साधारण लिंगों के अतिरिक्त एक मुखी लिंग भी बनाए और पूजे जाते थे।

शिवलिंग के समान शिव को पुरुषाकार प्रतिमाएँ भी लोकप्रिय हो रही थी। कुषाण सम्राट 'विम' के समय से अंतिम शासक वासुदेव तक कितने ही कुषाण सिक्के शिव की प्रतिमा से अंकित होते रहे। पाषाण कलाकृतियों में निम्नांकित विशेषताओं के साथ शिव मूर्ति के दर्शन होते हैं -



- एकमुखी शिवलिंग में केवल मुखमण्डल और जटाभार दिखलाई पड़ता है। शिव का तीसरा नेत्र पर दिखलाया जाता है पर इस काल में वह सदैव आड़ा बना रहता है खड़ा नहीं।

- कुषाण काल तक शिव के मुख्य चिह्न बैल, जटाभाट, तीन नेत्र व त्रिशूल यहाँ दृष्टिगोचर होते हैं। साँप, चंद्रमा, व्याघ्राम्बर, डमरु, गंगा आदि बातों का यहाँ अभाव है।

- अकेले शिव के अतिरिक्त उनका शक्ति के साथ अर्धनारीश्वर के रूप में भी पूजन होता था (मथुरा संग्रहालय मूर्ति संख्या १५.८७४)। इस प्रकार की मूर्तियाँ मथुरा में प्राप्त होती हैं, जिनमें शिव को ऊर्ध्व-भेद स्थिति में विशेष, रूप में दिखलाया गया है। यह उनकी अमोघ उत्पादन शक्ति एवं चिर स्थायित्व का द्योतक है।

- शिव और पार्वती की स्वतंत्र प्रतिमाएँ भी मथुरा कला में प्राप्त हैं।^{२३}
शक्ति प्रतिमाएँ -

देवी की मूर्तियों में लक्ष्मी, महिषासुर मर्दिनी दुर्गा व मातृकाओं की मुख्यतः गणना की जा सकती है। इनके अतिरिक्त 'हारिती' व 'वसुधार' की प्रतिमाएँ भी मिलती हैं।

लक्ष्मी और गजलक्ष्मी की प्रतिमा तो भरहूत और सांची सी ही चली आ रही थी^{२४} और ब्राह्मण धर्म के समान बौद्धों के यहाँ भी समादृत हो चुकी थी। मथुरा कला शैली ने थोड़े परिवर्तनों के साथ उसे अपनाया। यहाँ हमें लक्ष्मी के तीन रूप प्राप्त होते हैं -

१. एक हाथ में कमल धारण करने वाली आसनस्थ लक्ष्मी। यह बहुधा त्रिभुज होती है।

२. उसी प्रकार की खड़ी प्रतिमा।

३. गजलक्ष्मी, एक हाथ में कमल लिये खड़ी।

४. पूर्ण कुम्भ से उद्भूत होने वाली श्रीपर्णीलता या कमल लता के बीच खड़ी मात्रत्व का संकेत करने वाली श्रीदेवी। दुर्गा के रूप में यहाँ केवल चतुर्भुज दुर्गा का रूप मिलता है। उसके ऊपरी हाथों में तलवार और दल है, निचले दाँये हाथ में त्रिशूल है और निचले बाँये हाथ में वह महिष को दबा रही है। असुर भी पशुरूप ही है, मानव-पशु के रूप में नहीं। दुर्गा के आठ हाथ और अठारह हाथ वाले रूप उत्तर काल में बने, कुषाण काल में वे नहीं दिखलाई पड़ते।^{२५} मातृकाओं का कुषाण काल में पर्याप्त बोल-बाला था। कुषाण कालीन जो मादकापट्ट जो मिला है, उस पर अंकित देवियाँ मानव मुखों से नहीं अपितु पशु-पक्षियों के मुखों से युक्त हैं और प्रत्येक की गोद में एक शिशु है। उनकी संख्या भी अनिवार्यतः सत्ता नहीं है। अन्य देवियों में देवी हरीति का स्थान मुख्य है। इनकी कुषाण कालीन प्रतिमाएँ अच्छी मात्रा में उपलब्ध हुई हैं। जिनमें ये बच्चों से घिरी हुई अकेली अतवा कुबेर के साथ दिखलाई पड़ती है।

सूर्य प्रतिमाएँ -

सूर्य का पूजन दो प्रकार से किया जाता है। एक तो मण्डलाकार बिम्ब का पूजन और दूसरे मानव रुपिणी सूर्य-प्रतिमा का पूजन। सूर्य की भारतीय पद्धति की नर आकार प्रतिमा, जिसे कुषाण काल के पूर्व की माना जाता है, बुद्ध गया से प्राप्त हुई है। वह रथारुढ़ है। परन्तु यह रूप भारत में विशेषकर कुषाण काल में लोकप्रिय न हो सका। इसका कदाचित् यह भी कारण था कि मानवाकार सूर्य की उपासना भारत में मुख्यतः ईरान से आई।

ये विदेशी लोग जिन्हें भारतीय साहित्य में 'मग' नाम से जाना गया, अपने साथ सूर्य उपासना की पद्धति ले आए, इन्हीं के वेश के समान इनके देवताओं की वेशभूषा भी होना स्वाभाविक था। इसलिए कुषाण कालीन सूर्य मूर्तियाँ लम्बा कोट, चुस्त पाजामा और ऊँचे बूट पहने हुए दिखलाई पड़ती हैं। इस वेश को भारत में 'उदीच्य' वेश के नाम से जाना गया। कुषाण कालीन माथुरी कला में रथारुढ़ एवं आसनारुढ़, सूर्य की लंबा कोट, बूट, गोल टोपी तथा इने-गिने अलंकरण धारण की हुई प्रतिमा पाई गई है। एक मूर्ति में उनके छोटे पंख भी दिखलाए गए हैं (मथुरा संग्रहालय मूर्ति संख्या-डी-४६) दूसरी में उनके आसन पर ठीक वैसी ही अग्नि की बेदी बनी है जैसी कतिपय ईरानी सिक्कों पर पाई जाती है।

अन्य प्रतिमाएँ -

ऊपर गिनाई हुई मूर्तियों के अतिरिक्त 'कार्तिकेय', 'कुबेर', 'इन्द्र' व अग्नि मूर्तियाँ भी कुषाण काल में बनीं। अन्य देवताओं के समान इन देवताओं के ध्यान (लांछन) कुषाण काल में बड़े ही सीधे-साधे थे। कार्तिकेय का मुख्य चिह्न था शक्ति या भाला। एक



मुखद्विभुजशक्तिधर कुमार कार्तिकेय की सुन्दर प्रतिमा मथुरा संग्रहालय में है जो शक संवत् ११ अथवा ई. सन ८९, में बनी थी (मथुरा संग्रहालय मूर्ति संख्या ४२.२९४९)।

III. परिणाम

कुबेर की मूर्तियों का मथुरा में वैपुल्य है। मोटे पेट वाले स्थूलकाय धन के देवता कुबेर देखते ही बनते हैं। कभी वे पाल थी मार कर सुख से स्मित करते हुए बैठे दिखलाई पड़ते हैं, कभी मदिरा का यषक हाथ में लिए रहते हैं और कभी लक्ष्मी और हरीति के साथ एक ही शालप पर शोभित रहते हैं।

अग्नि की मुख्य पहचान उनकी तुंजडिल तनु, यक्षोपवीत, जटाभार, व पीछे दिखलाई पड़ने वाली ज्वालाएँ हैं (मथुरा संग्रहालय मूर्ति संख्या ४०.२८८०, ४०.२८८३)। इनके विशेष आयुध, वाहन मेष आदि बातें कुषाण कालीन मूर्तियों में नहीं दिखलाई पड़ती।

इन प्रमुख देवी-देवताओं के अतिरिक्त माथुरी कला में 'नाग' व नाग स्त्रियों की प्रतिमाएँ भी अच्छी मात्रा में मिलती हैं। कुषाण काल में यहाँ पर 'दधिकर्ण नाग' का मन्दिर विद्यमान था। इस नाग की लेखांकित प्रतीक यहाँ से प्राप्त हुई है। नाग प्रतिमाओं में अन्य नागों के अतिरिक्त बलराम की मूर्तियों को भी गिनना होगा। पुराणों के अनुसार बलराम शेषावतार थे। उनकी हल और मूसल को धारण करने वाली एक शृंग कालीन मूर्ति मथुरा में पाई गई है। यह मूर्ति इस समय लखनऊ संग्रहालय में है। कुषाण कालीन बलराम की मूर्तियों में वे हाथ में मद का प्याला लिए दिखलाई पड़ते हैं। गले में वनमाला पड़ी रहती है, पीछे सपं की फणा बनी रहती है। इस पर कभी-कभी स्वास्तिक-मत्स्ययुग्म, पूर्णघट, अष्ट मांगलिक चिह्न आदि भी बने होते हैं।^{१२६}

साधारणतया यहाँ नाग की प्रतिमाएँ मनुष्याकार ही होती हैं केवल मस्तक के ऊपर सपंफणा बनी रहती है। हाथ में बहुधा छोटा सा जलकुम्भ रहता है नाग स्त्रियों की मूर्तियाँ भी लगभग ऐसी ही होती हैं। एक विशेष मूर्ति ऐसी भी मिली है, जिसमें एक नाग रानी के कंधे से पाँच अन्य नाग शक्तियाँ उद्भूत होती हुई दिखलाई गई हैं।

इस प्रकार धर्म निरपेक्ष भाव से नास्तिक एवं आस्तिक दोनों प्रकार के सम्प्रदायों की सेवा करते हुए कला के एक ऊँचे आदर्श की स्थापना करना माथुरी कला का सबसे महत्वपूर्ण योगदान है।^[18,19]

IV. निष्कर्ष

जब कोई कला के संदर्भ में बात करना है तो आमतौर पर उसका अभिप्राय दृष्टिमूल कला से होता है, जैसे-वास्तुकला, मूर्तिकला एवं चित्र कला। प्राचीन कला में ये तीनों पहलू आपस में मिले हुए थे। प्राचीन साहित्य से पता चलता है कि भारतीय संस्कृति में मूर्तिकला का विशेष स्थान रहा है अलग-अलग इतिहास काल में उस संस्कृति को परिलक्षित करती हुयी मूर्तिकला अपने आप में ही एक अदभुत दृश्य प्रस्तुत करती है। जहाँ एक तरफ मूर्ति को धर्म से जोड़ा जा सकता है वही दूसरी ओर यह अलग-अलग संप्रदायों के विश्वास का भी प्रतीक माना जा सकता है। इसी परिप्रेक्ष्य में अपनी Art & Culture के मूर्तिकला Series में हम आज कुछ अन्य कालों के विशिष्ट मूर्तिकलाओं का विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे।

आइए सबसे पहले जानते हैं कुषाणकालीन मूर्तिकला के बारे में-

कुषाणकालीन मूर्तिकला

शुंग-सातवाहन काल के उपरांत कुषाणवंशीय शासकों के काल में भारतीय मूर्तिकला अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गयी। इस काल में मूर्तिकला की दो महान शैलियों - गांधार और मथुरा कला शैलियों का विकास हुआ। गांधार शैली पर यूनानी और रोमन प्रभाव परिलक्षित होता है। मथुरा शैली में देशी शैली का प्रभाव बिल्कुल स्पष्ट है। गांधार (निचली काबुल घाटी और पेशावर के चारों ओर उत्तरी सिन्धु) और मथुरा शैली जो कि कुषाण राजाओं के समय में प्रस्फुटित हुई, बुद्ध की प्रथम मूर्तियों के निर्माण की कीर्ति में परस्पर स्पर्द्धा करती हैं। दरअसल दोनों ही कला शैलियों में बुद्ध की मूर्तियाँ बनायीं गयीं और बौद्ध के जीवन से संबंधित विषयों का निरूपण किया गया। अनेक भारतीय विद्वानों का अब विश्वास है कि बुद्ध की मूर्ति सर्वप्रथम मथुरा में निर्मित हुई, जबकि अनेक प्रारंभिक यूरोपीय विद्वान गान्धार का समर्थन करते हैं।

इसी तरह हमारी अगली मूर्तिकला गांधार कला शैली है-

गांधार कला शैली



गांधार शैली रोमन साम्राज्य की कला से प्रभावित थी। जब इस शैली का प्रादुर्भाव हुआ, उस समय तक प्रायः यूनानी बौद्ध कहे जाने वाले बैक्ट्रिया और उत्तरी भारत के यूनानी राज्य कभी के समाप्त हो चुके थे। दरअसल इस शैली के विकास का श्रेय सिकन्दर के यूनानी- बैक्ट्रियन उत्तराधिकारियों को नहीं है, अपितु पश्चिम से होने वाले व्यापार, रोम की बढ़ती हुई समृद्धि तथा पूर्व की ओर अग्रसर होने वाले सैन्य दल को है। कनिष्क और उसके उत्तराधिकारियों ने भी गांधार शैली को प्रोत्साहन दिया। नवीन धर्मनिष्ठ बौद्ध धर्म ने मूर्ति पूजा की माँग की और बुद्ध तथा बोधिसत्वों की असंख्य मूर्तियों का निर्माण हुआ। इस काल में बौद्ध धर्म और बौद्ध कला का बड़े पैमाने पर प्रसार-प्रसार और विकास हुआ।

इस शैली में बनी मूर्तियों की सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

सभी मानव मूर्तियों के हाथ-पैर की अंगुलियों में ग्रीक कला की वास्तविकता न होकर भारतीयता का भावपूर्ण लोच है। गांधार शैली में निर्मित मूर्तियाँ भूरे रंग के पत्थरों से निर्मित हैं। कुछ मूर्तियों का निर्माण काले स्लेटी पत्थर से भी किया गया है।

इस शैली में मानव शरीर का यथार्थ अंकन है। मांसपेशियों के उतार-चढ़ाव स्पष्ट हैं। शरीर के अंगों का सूक्ष्म अंकन है।

मूर्तियाँ ध्यान, पद्मासन, धर्मचक्र-प्रवर्तन, वरद तथा अभय आदि मुद्राओं में हैं।

वस्त्रों का अंकन करते समय मोटे वस्त्रों के सिलवटों की ओर सूक्ष्मता से ध्यान दिया गया है, जिससे वे प्राकृतिक दिखाते हैं।

आँखों के अंकन में भारतीयता एवं बांकपन दृष्टिगोचर होता है। इनमें कटाक्ष है तथा पलक कुब्जदार (अडील) तथा भौंह नीचे से प्रारंभ होकर आँख की ओर प्रविलम्बित करती है जो पूर्णतः भारतीय है। यूनानी आँख बड़ी तो होती है पर उसमें कटाक्ष और बांकपन का अभाव परिलक्षित होता है।

बुद्ध और बोधिसत्वों की मूर्तियों में आध्यात्मिकता तथा भावुकता न होकर बौद्धिकता एवं शारीरिक सौन्दर्य की ही प्रधानता दिखाई देती है। इनमें वह सहजता तथा भावात्मक स्नेह नहीं है जो भरहुत, साँची, बोधगया अथवा अमरावती के मूर्तियों में दिखाई देता है।

गांधार कला की अनेक कलाकृतियाँ बुद्ध के जीवन काल से जुड़ी हुई हैं अथवा बुद्ध की अन्य भावभंगिमाओं को लेकर बनायी गयी हैं।

वास्तव में यह शैली तथागत बुद्ध के जीवन और कार्यों का सजीव चित्रण प्रस्तुत करती है। इस शैली पर यूनानी प्रभाव अवश्य दृष्टिगोचर होता है, लेकिन इस शैली की आत्मा भारतीय है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि गांधार शैली में भारतीय विषयों को यूनानी ढंग से व्यक्त किया गया है। इसका विषय बौद्ध होने के कारण इसे यूनानी-बौद्ध कला के नाम से भी जाना जाता है।

गांधार मूर्ति कला की सबसे उत्कृष्ट मूर्ति एक योगी के रूप में बैठे हुए बुद्ध की मूर्ति है। एक संन्यासी का वस्त्र पहने हुए उनका मस्तक आध्यात्मिक शक्ति बिखेरता हुआ प्रतीत होता है। शुद्धरूप से भारतीय प्रतीत होती यह मूर्ति यह दर्शाती है कि कला घरेलू और विदेशी तत्वों का मिला-जुला रूप है।^[20]

संदर्भ

1. पुरी, बैज नाथ (1965)। कुषाणों के अधीन भारत । भारतीय विद्या भवन.
2. ^ स्टोकस्टेड, मर्लिन; कोथेन, माइकल डब्ल्यू. (2013). कला इतिहास (5वां संस्करण) अध्याय 10: 1200 से पहले दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशिया की कला। पियर्सन। पीपी. 306-308 . आईएसबीएन 978-0205873487.
3. ^ होल्ट, फ्रैंक ली (1999). थंडरिंग ज़ीउस: द मेकिंग ऑफ़ हेलेनिस्टिक बैक्ट्रिया . यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस. पी. 136. आईएसबीएन 9780520920095.
4. ^ डुइकर, विलियम जे.; स्पीलवोगेल, जैक्सन जे. (2015). विश्व इतिहास . सेनगेज लर्निंग. पी. 279. आईएसबीएन 9781305537781.
5. ^ मुखर्जी, राधाकुमुद (1997)। गुप्त साम्राज्य . मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन. पी। 143. आईएसबीएन 9788120804401.
6. ↑ गोखले, बालकृष्ण गोविंद (1995). प्राचीन भारत: इतिहास और संस्कृति . लोकप्रिय प्रकाशन. पृ. 171-173. आईएसबीएन 9788171546947.
7. ^ लोवेनस्टीन, टॉम (2012). प्राचीन भारत और दक्षिण पूर्व एशिया की सभ्यता . द रोसेन पब्लिशिंग ग्रुप, इंक. पी. 53. आईएसबीएन 9781448885077.
8. ^ फेडोरोव, माइकल (2004)। "कुषाणों की उत्पत्ति पर मुद्राशास्त्रीय और मानवशास्त्रीय डेटा के संदर्भ में" (पीडीएफ) । ओरिएंटल न्यूमिस्मैटिक सोसाइटी । 181 (शरद ऋतु): 32. मूल (पीडीएफ) से 6 अक्टूबर 2019 को संग्रहीत । 4 नवंबर 2019 को लिया गया ।
9. ^ खलचायन - एनसाइक्लोपीडिया ईरानिका । पी। आकृति 1।
10. ^ "वास्तविक रंगों में देखें" .
11. ^ अब्दुल्लाव, काज़िम (2007). "मध्य एशिया में खानाबदोश प्रवास (अलेक्जेंडर के बाद: इस्लाम से पहले मध्य एशिया)" . ब्रिटिश अकादमी की कार्यवाही . 133 : 87-98.
12. ^ मध्य एशिया, अफ़ग़ान में ग्रीक कला - एनसाइक्लोपीडिया ईरानिका .



13. ^ इस स्रोत के अनुसार यह भी एक शक है
14. ^ रोलैंड, बेंजामिन (1971)। "ग्रेको-बैक्ट्रियन कला और गांधार: खलचयन और गांधार बोधिसत्व"। एशियाई कला के अभिलेखागार . 25 : 29–35. आईएसएसएन 0066-6637 . JSTOR 20111029 .
15. ^ "चेन-मेल कवच में शूरवीरों की समानता खलचयन राहत में है जो शक जनजाति (संभवतः सकारौल्स) के खिलाफ युएझी की लड़ाई को दर्शाती है। युएझी के दुश्मनों की भारी घुड़सवार सेना द्वारा पहने जाने वाले चेन-मेल कवच के अलावा, इन योद्धाओं की अन्य विशिष्ट पहचान लंबी साइड-मूंछें हैं (...) हमें लगता है कि लंबी साइड-मूंछों वाले इन सभी विचित्र व्यक्तियों को युएझी के दुश्मनों के रूप में पहचानना और उन्हें सकारौल्स से जोड़ना संभव है (...) वास्तव में साइड-मूंछों वाले ये अभिव्यंजक आंकड़े युएझी चित्रण के शांत और राजसी चेहरों और मुद्राओं से बहुत अलग हैं।" अब्दुल्लाव, काज़िम (2007)। "मध्य एशिया में खानाबदोश प्रवास (अलेक्जेंडर के बाद: इस्लाम से पहले मध्य एशिया)" । ब्रिटिश अकादमी की कार्यवाही । 133 : 89।
16. ^ , मर्लिन; कोथ्रेन, माइकल डब्ल्यू. (2014)। कला इतिहास 5वां संस्करण अध्याय 10 1200 से पहले दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशिया की कला। पियर्सन। पीपी. 306-308 . आईएसबीएन 978-0205873470.
17. ^ "देवता ज़ीउस/सेरापिस/ओहरमाज़द और उपासक के साथ पैनल" . www.metmuseum.org . मेट्रोपॉलिटन म्यूज़ियम ऑफ़ आर्ट.
18. ^ मार्शाक, बोरिस; ग्रेनेट, फ्रांटज़ (2006)। "उने पेइंट्योर कौचन सुर तोइले"। अकादमी के शिलालेख और बेल्स-लेट्रेस के सत्रों का संकलन । 150 (2): 257. डीओआई : 10.3406/क्रे.2006.87101 ।
19. ^ मार्शाक, बोरिस; ग्रेनेट, फ्रांटज़ (2006)। "उने पेइंट्योर कौचाने सुर तोइले" । अकादमी के शिलालेख और बेल्स-लेट्रेस के सत्रों का संकलन । 150 (2): 947-963. डीओआई : 10.3406/क्रे.2006.87101 । आईएसएसएन 0065-0536 .
20. ^ री, जुह्युंग (2018)। गांधार कला में कालक्रम की समस्याएं (पीडीएफ) । आर्कियोप्रेस पुरातत्व। पीपी. 40-41.



INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH

IN SCIENCE, ENGINEERING, TECHNOLOGY AND MANAGEMENT



+91 99405 72462



+91 63819 07438



ijmrsetm@gmail.com

www.ijmrsetm.com